ISSN–2278-5655

AMIERJ Peer Reviewed Journal

Aarhat Multidisciplinary International Education Research Journal

Volume–X, Issues– V *Sep – Oct 2021*

संस्कृत वाड.मय की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० अर्चना पाल

एसो० प्रोफेसर एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग

आर.सी.ए. गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, मथुरा

सार –

संसार की प्राचीनतम संस्कृत भाषा का वाड.मय वर्तमान में भी प्रासंगिक है। समय का प्रवाह जिस तीव्र गति से दिशा बदल रहा है, उसे देखते हुये कभी–कभी यह प्रतीत होने लगता है कि हमारा संस्कृत साहित्य अपनी प्रांसगिकता खोता जा रहा है तथा परिवर्तन की जो प्रचंड आँधी आ रही है, उसका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ रहा है, परन्तु संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत है। ऋग्वैदिक काल से अनुप्राणित भारतीय संस्कृत साहित्य की धारा आज तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही हैं। संस्कृत साहित्य का स्वरूप व्यापक होने के कारण मानव की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक तथा दार्शनिक सभी उन्नतियों का मार्ग प्रशस्त करने वाला है। राग–द्वेष आदि द्वन्दों से सर्वथा मुक्त एवं विश्वबन्धुत्व और समत्व की भावना से समन्वित संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित जीवन–मूल्य मानव को उन्नति के सोपानों पर आरोहण कराने वाले हैं।

प्रस्तावना –

हमारे संस्कृत साहित्य में तप, त्याग, दया, धैर्य, उदारता, वीरता, ओजस्विता, सहिष्णुता, सत्यवादिता, दानशीलता, धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता आदि गुणों से विशिष्ट भारतीय संस्कृति का भव्य रूप दृष्टिगत होता है। वाल्मिकी और व्यास की कृतियाँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मानव के बाह्य विकास में सदैव उसके आन्तरिक विचारों का गहन योग रहता है और इन आन्तरिक विचारों का निर्माण उसके संस्कारों से होता है, जो हमें अपने साहित्य में प्रतिपादित व्रतों जैसे सत्यभाषण, अहिंसा, अपरिग्रह, शौच, सदाचार, उदारता, सहिष्णुता एवं इन्द्रियजय आदि के पालन द्वारा प्राप्त होते है। इसीलिये मनुस्मृति में मन और वाणी को शुद्ध, संयत और सुरक्षित रखने वाले अर्थात् मन से किसी का अहितचिन्तन न करने वाले तथा किसी के प्रति कटु अप्रिय एवं असत्य वाणी न बोलने वाले तथा किसी के समाने क्रोध एवं अंहकार आदि का प्रदर्शन न करने वाले व्यक्ति को शुद्ध बुद्ध कहा गया है तथा उपर्युक्त कार्यों को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया है।

भारतीयों का जीवन प्राचीनकाल से ही धर्मगत उत्कण्ठा से अनुप्राणित रहा है, जिनमें नैतिक मूल्यों आचारगत अभिव्यक्तियों तथा जगन्नियता के प्रति समर्पण की भावना का सन्निवेश है।

गत वर्षों में मानव के भौतिकतावाद की ओर बढ़ते झुकाव ने इस भावना को गहरी ठेस पहुँचायी है। धर्म का व्यवहारिक महत्व कर्त्तव्य का समुचित पालन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ ही साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष भी करता है।

आज पुनः पूरा विश्व अध्यात्म की ओर प्रेरित होता हुआ प्रतीत हो रहा है और संस्कृत साहित्य की प्रासंगिकता भी फिर से बढती जा रही है। यदि इसके वास्तविक कारण के विषय में विचार करें तो हम पाते हैं कि आज का मानव भौतिकता की अंधी दौड में दौडते–दौडते लगभग थक सा गया है और उसे यह लगने लगा है कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य सुख, साधन मात्र एकत्र करना ही नही है, अपितु मानसिक–शान्ति मानव जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

बांल्यकाल से ही यदि मनुष्य को इसके महत्व के विषय में बताया जाता है, तो निश्चित रूप से वह सन्मार्ग पर चलकर जीवन में सफल हो पाता है। इसी प्रकार सत्संगति भी मानव–जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिये आवश्यक है।

मनुष्य यदि अच्छे लोगों की संगति में रहता है तो निश्चित रूप से वह सज्जन और विनम्र हो जाता है और इसके विपरीत यदि वह दुष्ट लोगों की संगति में रहता है तो वह दुष्ट हो जाता है और उसकी बुद्धि मलिन हो जाती ह।

भतृहरि ने नीतिशतकम् में सत्संगति के विषय में कहा है कि–

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
संत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्

नीतिशतकम् (20)

अर्थात्

''(सत्संगति) बुद्धि की जडता को दूर करती है, वाणी में सत्य को सींचती है, मन को उन्नति देती है और पाप को दूर करती है। मन प्रसन्न करती है और दिशाओं में कीर्ति फैलाती है। बंताओ सत्संगति पुरूषों का क्या उपकार नहीं करती ? इसलिए अधिक उन्नति की इच्छा करने वाले मनुष्य को सज्जनों की ही संगति करनी चाहिए, दुष्टों की कभी नहीं।''

मानव जीवन के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य धैर्यपूर्वक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास करे क्योंकि धैर्यवान व्यक्ति अपने निश्चित मार्ग से कभी भी विचलित नहीं होते हैं चाहे उन्हें अपने सुनिश्चित मार्ग पर चलते समय लोग उनकी निंदा करें अथवा प्रशंसा परन्तु वे अपना मार्ग नहीं छोडते हैं–

नीतिशतकम् में कहा गया है कि –

निन्दन्तु नीतिनिपुणां यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीतिशतकम् (76)

अर्थात्

नीति कुशल जन चाहे निन्दा करें अथवा प्रशंसा, लक्ष्मी आ जाये अथवा स्वेच्छानुसार चली जाये, चाहे आज ही मरण हो अथवा युगान्तर में, परन्तु धैर्यशाली जन न्याय के मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।''

इसी प्रकार से नीतिशतकम् में कर्म को धैर्य से करने की प्रेरणा देते हुये कहा गया है कि

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नै र्मुहुर्नुहुरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति।।

(नीतिशतकम् 73)

अर्थात्

नीच अधम जन विघ्नों के डर से (काम) आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम जन (कार्य को) आरम्भ करके विघ्नों से ताडित होकर कार्य छोड देते हैं, परन्तु उत्तम गुण सम्पन्न लोग विघ्नों से बार–बार ताडित होने पर भी आरम्भ किये हुये कार्य को नहीं छोड़ते।

पिछले कुछ दशकों में विश्व के अधिकांश देशों के द्वारा ऐसे राजनैतिक सिद्धान्त एवं रणनीतियां प्रस्तुत की गयी है, जिनमें भय का उत्तर भय, घृणा का उत्तर घृणा तथा हिंसा का उत्तर हिंसा से दिये जाने की बात की गयी है। इस प्रकार की विश्व–नीतियों से उत्पन्न होने वाले भारी खतरे तथा इन नीतियों की निरर्थकता की बात अब अंततः स्वीकार की जाने लगी है। निःसन्देह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विस्तार में ही विश्व का मंगल है।

संस्कृत साहित्य में नैतिक चरित्र तथा सदाचारयुक्त कर्त्तव्यों पर विशेष बल दिया गया है एवं इन्द्रियजय को मानव के लिये परमावश्यक माना गया है, क्योंकि जो व्यक्ति इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है वह किसी भी व्यक्ति को अपने वश में नहीं कर सकता है, अपितु इन इन्द्रियों के ही व्यसन से वह नष्ट हो जाता है।

कठोपनिषद में भी कहा गया है कि अपने–अपने कारण से भिन्न रूपों में उत्पन्न हुयी इन्द्रियों की जो पृथक्–पृथक् सत्ता है और जो उनका उदय और अस्त होना रू॰ स्वभाव है, उसे जानकर धीर पुरूष शोक नहीं करता–

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति।।

कठोपनिषद 2। 3। 6

इसी तथ्य को गीता में भी व्यक्त किया गया है–

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरूषं पुरूर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सौमृतत्वाय कल्पते।।
श्री मद्भगवद्गीता(गीता) 2.15

अर्थात्

हे पुरूषश्रेष्ठ! सुख–दुख में समत्व भाव रखने वाले जिस धीर पुरूष को ये इन्द्रियाँ और उनके विषयों के संसर्ग व्यथित नहीं करते, वह अमरत्व प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार से गीता में आत्मा की अनश्वरता और निर्विकारता के बारे में बताया गया है तथा यह आत्मा एक शरीर ये दूसरे शरीर में कैसे संक्रमण करती है इसके लिये भी एक लौकिक उदाहरण प्रस्तुत किया है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरौपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा–न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
(श्री मदभ्गवगीता 2.22)

अर्थात्

''जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नवीन वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्वर्ती आत्मा पुराने शरीरों को त्यागकर अन्य नवीन शरीरों को प्राप्त होता है।'' काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष इन छः प्रवृत्तियों को वश में रखकर हमें कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य का समुचित विवेचन करना चाहिये। यदि हम संसार की वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करें, तो हम पाते है कि संसार की वर्तमान परिस्थितियों के लिये उपर्युक्त तत्व ही पूर्णतः दोषी है। इन्हीं के कारण मनुष्यों में भय, घृणा, लालच तथा हिंसा व्याप्त होती जा रही है तथा तथाकथित विकास के बावजूद हम तनावग्रस्त होते जा रहे है तथा मानवता के मार्ग से विचलित होते जा रहे है।

संस्कृत वाड.मय में गुण–दोष, शुभ–अशुभ, सत्य–असत्य, सदाचार–अत्याचार, न्याय–अन्याय, अधिकार और कर्तव्य के स्वरूप का व्यापक विवेचन किया गया है।

वर्तमान समय में संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित जीवन–मूल्यों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ती जा रही है। वर्तमान जीवन की जटिलताओं तथा समाज के बदलते स्वरूप ने हमारे मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को बुरी तरह से प्रभावित किया है तथा जीवन में घटी प्रतिकूल घटनाओं के कारण हम स्वयं को हताश अनुभव करने लगते है तथा निराशा के कारण हमारे भीतर नकारात्मक सोच पैदा हो जाती है एवं यही नकारात्मक सोच हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हुये, हमारी कार्यप्रणाली को भी आघात पहुँचती है। अत्यधिक तनाव से उपजी समस्या का निराकरण गीता के इस श्लोक के द्वारा आसानी से किया जा सकता है, जिसमें श्री कृष्ण अर्जुन को कर्म का उपदेश देते हैं–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सड.ोस्त्वकर्मणि।। 2.47

''(कर्म करना तेरा कार्य है, फलों के विषय में, सोचना नहीं,) फल मिलना या न मिलना कभी भी तेरे हाथ में नहीं है इसीलिये अमुक कर्म का अमुक फल अवश्य मिलेगा यह इच्छा मन में रखकर काम करने वाला तू न बन, अकर्म के प्रति तेरा अनुराग न हो।''

इसके अनुसार मानव को अपने कर्म के प्रति पूरी तरह से समर्पित होते हुये अपने कार्यफल को उस सर्वशक्तिमान पर छोड देना चाहिये। प्रमुख हृदय विशेषज्ञों का मानना है कि आज की वर्तमान परिस्थितियों से हृदय–रोगियों की संख्या में दिनों–दिन वृद्धि होती जी रही है तथा इसका इलाज मात्र चिकित्सकों के पास नही है, उनके अनुसार यदि हम अपने को सम्पूर्ण न मानते हुये ईश्वर में आस्था रखें तो जीवन में दिन–प्रतिदिन घटने वाली प्रतिकूल घटनायें भी हमें विचलित नहीं कर पायेंगी तथा हम हृदय सम्बन्धी समस्याओं को दूर रख पायेंगे। अब शोधों के माध्यम से यह बात सामने आ गयी है कि अल्सर, कैंसर, सिरदर्द, उच्च रक्तचाप, गठिया, एलर्जी, कोलाइटिस एवं हृदय रोग जैसे अनेक रोग हमारे व्यवहार पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। संस्कृत साहित्य से हमें जिन मूल्यों, मान्यताओं, आयामों और स्थापनाओं का ज्ञान होता है, यदि उन्हीं के अनुरूप व्यक्ति कर्म की ओर प्रवृत्त होता हुआ अपना जीवन–यापन करता है तो स्वयं को बहुत सुरक्षित अनुभव करता है तथा वर्तमान जीवन की जटिलताओं से संघर्ष करने में समर्थ हो पाता है।

यदि भाषा की दृष्टि से हम संस्कृत भाषा का विश्लेषण करें, तो हमारी यह भाषा कुछ पिछड सी गयी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकार की गयी, परन्तु स्वाधीनता के पूर्व से चला आ रहा अंगेजी भाषा का वर्चस्व आज भी समाप्त नहीं हुआ है। अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व और दबाव के कारण आज संस्कृत भाषा का विकास अवरूद्ध अवश्य हुआ है परन्तु संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित जीवन–मूल्यों को अपनाकर मानव वर्तमान जीवन की जटिलताओं को दूर करके तथा कर्त्तव्य एवं कर्म का पालन करते हुये और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव को अपनाकर अपना जीवन श्रेष्ठ एवं उन्नत रूप में व्यतीत कर सकता है, अब यह तथ्य सभी के द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है, इसीलिये संस्कृत साहित्य का भविष्य निश्चित रूप से स्वर्णिम है।

सन्दर्भ – ग्रन्थः–

1- History of Indian Literature – Vol l Nitz.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – बल्देव उपाध्याय।
3. मनुस्मृति। डॉ० चमनलाल गौतम – संस्कृति संस्थान बरेली उ०प्र०
4. वाल्मीकि रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. श्रीमदभगवतगीता – गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. नीतिशतकम – डॉ० बाबूराम त्रिपाठी – महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा।